श्रीमद्भागवत रसिक कुटुंब

श्रीमद्भगवद्गीता अष्टम् अध्याय

श्रीमद् भागवत का यह सार
भगवद् भक्ति ही आधार

पार्थ सारथी ने समझाया धर्म -कर्म का ज्ञान,
मानव जीवन सफल बना ले गीता अमृत मान।

नारायणं(न्) नमस्कृत्य, नरं(ञ्) चैव नरोत्तमम्।
देवीं(म्) सरस्वतीं(वँ) व्यासं(न्), ततो जयमुदीरयेत्

अन्तर्यामी नारायण स्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण, (उनके नित्य सखा) नरस्वरूप नरश्रेष्ठ अर्जुन, (उनकी लीला प्रकट करनेवाली) भगवती सरस्वती और (उन लीलाओं का संकलन करनेवाले) महर्षि वेदव्यास को नमस्कार करके जय के साधन वेद-पुराणों का पाठ करना चाहिये।

नामसङ्कीर्तनं(यँ) यस्य, सर्वपापप्रणाशनम्।
प्रणामो दुःखशमनस्, तं(न्) नमामि हरिं(म्) परम्

जिन भगवान के नामों का संकीर्तन सारे पापों को सर्वथा नष्ट कर देता है और जिन भगवान के चरणों में आत्मसमर्पण, उनके चरणों में प्रणति सर्वदा के लिए सब प्रकार के दुःखों को शांत कर देती है, उन्हीं परम -तत्वस्वरूप श्रीहरि को मैं नमस्कार करता हूं।

श्रीमद्भगवद्गीतायां(म्)
अथाष्टमोऽध्यायः

अर्जुन उवाच

किं(न्) तद्ब्रह्म किमध्यात्मं(ङ्), किं(ङ्) कर्म पुरुषोत्तम ।
अधिभूतं(ञ्) च किं(म्) प्रोक्त- मधिदैवं(ङ्) किमुच्यते ॥ 1 ॥

अर्जुन ने कहा- हे पुरुषोत्तम! वह ब्रह्म क्या है? अध्यात्म क्या है? कर्म क्या है? अधिभूत नाम से क्या कहा गया है और अधिदैव किसको कहते हैं ।

अधियज्ञः(ख्) कथं(ङ्) कोऽत्र, देहेऽस्मिन्मधुसूदन।
प्रयाणकाले च कथं(ञ्), ज्ञेयोऽसि नियतात्मभिः ॥ 2 ॥

हे मधुसूदन! यहाँ अधियज्ञ कौन है? और वह इस शरीर में कैसे है? तथा युक्त चित्त वाले पुरुषों द्वारा अंत समय में आप किस प्रकार जानने में आते हैं ।

श्रीभगवानुवाच

अक्षरं(म्) ब्रह्म परमं(म्), स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते ।

भूतभावोद्भवकरो, विसर्गः(ख्) कर्मसञ्ज्ञितः ॥ 3 ॥

श्री भगवान् ने कहा- परम अक्षर 'ब्रह्म' है, अपना स्वरूप अर्थात् जीवात्मा 'अध्यात्म' नाम से कहा जाता है तथा भूतों के भाव को उत्पन्न करने वाला जो त्याग है, वह 'कर्म' नाम से कहा गया है ।

अधिभूतं(ङ्) क्षरो भावः(फ्), पुरुषश्चाधिदैवतम् ।

अधियज्ञोऽहमेवात्र, देहे देहभृतां(वँ) वर ॥ 4 ॥

उत्पत्ति-विनाश धर्म वाले सब पदार्थ अधिभूत हैं, हिरण्यमय पुरुष अधिदैव है और हे देहधारियों में श्रेष्ठ अर्जुन! इस शरीर में मैं वासुदेव ही अन्तर्यामी रूप से अधियज्ञ हूँ ।

अन्तकाले च मामेव, स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।

यः(फ्) प्रयाति स मद्भावं(यँ), याति नास्त्यत्र सं(म्)शयः ॥ 5 ॥

जो पुरुष अंतकाल में भी मुझको ही स्मरण करता हुआ शरीर को त्याग कर जाता है, वह मेरे साक्षात् स्वरूप को प्राप्त होता है- इसमें कुछ भी संशय नहीं है ।

यं(यँ) यं(वँ) वापि स्मरन्भावं(न्), त्यजत्यन्ते कलेवरम् ।

तं(न्) तमेवैति कौन्तेय, सदा तद्भावभावितः ॥ 6 ॥

हे कुन्ती पुत्र अर्जुन! यह मनुष्य अंतकाल में जिस-जिस भी भाव को स्मरण करता हुआ शरीर त्याग करता है, उस-उसको ही प्राप्त होता है; क्योंकि वह सदा उसी भाव से भावित रहा है ।

तस्मात्सर्वेषु कालेषु, मामनुस्मर युध्य च ।

मय्यर्पितमनोबुद्धिर्- मामेवैष्यस्यसं(म्)शयम् ॥ 7 ॥

इसलिए हे अर्जुन! तू सब समय में निरंतर मेरा स्मरण कर और युद्ध भी कर। इस प्रकार मुझमें अर्पण किए हुए मन-बुद्धि से युक्त होकर तू निःसंदेह मुझको ही प्राप्त होगा ।

अभ्यासयोगयुक्तेन, चेतसा नान्यगामिना ।

परमं(म्) पुरुषं(न्) दिव्यं(यँ), याति पार्थानुचिन्तयन् ॥ 8 ॥

हे पार्थ! यह नियम है कि परमेश्वर के ध्यान के अभ्यास रूप योग से युक्त, दूसरी ओर न जाने वाले चित्त से निरंतर चिंतन करता हुआ मनुष्य परम प्रकाश रूप दिव्य पुरुष को अर्थात् परमेश्वर को ही प्राप्त होता है ।

कविं(म्) पुराणमनुशासितार-

मणोरणीयां(म्)समनुस्मरेद्यः ।

सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूप-

मादित्यवर्णं(न्) तमसः(फ्) परस्तात् ॥ 9 ॥

जो पुरुष सर्वज्ञ, अनादि, सबके नियंता सूक्ष्म से भी अति सूक्ष्म, सबके धारण-पोषण करने वाले अचिन्त्य-स्वरूप, सूर्य के सदृश नित्य चेतन प्रकाश रूप और अविद्या से अति परे, शुद्ध सच्चिदानन्दघन परमेश्वर का स्मरण करता है ।

प्रयाण काले मनसाचलेन,

भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव ।

भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक्-

स तं(म्) परं(म्) पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥ 10 ॥

वह भक्ति युक्त पुरुष अन्तकाल में भी योगबल से भृकुटी के मध्य में प्राण को अच्छी प्रकार स्थापित करके, फिर निश्चल मन से स्मरण करता हुआ उस दिव्य रूप परम पुरुष परमात्मा को ही प्राप्त होता है ।

यदक्षरं(वँ) वेदविदो वदन्ति,

विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः ।

यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं(ञ्) चरन्ति,

तत्ते पदं(म्) सं(ङ्)ग्रहेण प्रवक्ष्ये ॥ 11 ॥

वेद के जानने वाले विद्वान् जिस सच्चिदानन्दघनरूप परम पद को अविनाशी कहते हैं, आसक्ति रहित यत्नशील संन्यासी महात्माजन, जिसमें प्रवेश करते हैं और जिस परम पद को चाहने वाले ब्रह्मचारी लोग ब्रह्मचर्य का आचरण करते हैं, उस परम पद को मैं तेरे लिए संक्षेप से कहूँगा ।

सर्वद्वाराणि सं(यँ)यम्य, मनो हृदि निरुध्य च ।

मूर्ध्न्याधायात्मनः(फ्) प्राण- मास्थितो योगधारणाम् ॥ 12 ॥

सब इंद्रियों के द्वारों को रोककर तथा मन को हृदय में स्थिर करके, फिर उस जीते हुए मन द्वारा प्राण को मस्तक में स्थापित करके, परमात्मा संबंधी योगधारणा में स्थित होना है।

ओमित्येकाक्षरं(म्) ब्रह्म, व्याहरन्मामनुस्मरन्।

यः(फ्) प्रयाति त्यजन्देहं(म्), स याति परमां(ङ्) गतिम् ॥ 13 ॥

जो पुरुष 'ॐ' इस अक्षररूप ब्रह्म को उच्चारण करता हुआ और उसके अर्थस्वरूप मुझ निर्गुण ब्रह्म का चिन्तन करता हुआ शरीर को त्याग कर जाता है, वह पुरुष परमगति को प्राप्त होता है।

अनन्यचेताः(स्) सततं(यँ), यो मां(म्) स्मरति नित्यशः ।

तस्याहं(म्) सुलभः(फ्) पार्थ, नित्ययुक्तस्य योगिनः ॥ 14 ॥

हे अर्जुन! जो पुरुष मुझमें अनन्य-चित्त होकर सदा ही निरंतर मुझ पुरुषोत्तम को स्मरण करता है, उस नित्य-निरंतर मुझमें युक्त हुए योगी के लिए मैं सुलभ हूँ, अर्थात् उसे सहज ही प्राप्त हो जाता हूँ ।

मामुपेत्य पुनर्जन्म, दुःखालयमशाश्वतम् ।

नाप्नुवन्ति महात्मानः(स्), सं(म्)सिद्धिं(म्) परमां(ङ्) गताः ॥ 15 ॥

परम सिद्धि को प्राप्त महात्माजन मुझको प्राप्त होकर दुःखों के घर एवं क्षणभंगुर पुनर्जन्म को नहीं प्राप्त होते ।

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः(फ्), पुनरावर्तिनोऽर्जुन ।

मामुपेत्य तु कौन्तेय, पुनर्जन्म न विद्यते ॥ 16 ॥

हे अर्जुन! ब्रह्मलोकपर्यंत सब लोक पुनरावर्ती हैं, परन्तु हे कुन्तीपुत्र! मुझको प्राप्त होकर पुनर्जन्म नहीं होता, क्योंकि मैं कालातीत हूँ और ये सब ब्रह्मादि के लोक काल के द्वारा सीमित होने से अनित्य हैं ।

सहस्रयुगपर्यन्त- महर्यद्ब्रह्मणो विदुः ।

रात्रिं(यँ) युगसहस्रान्तां(न्), तेऽहोरात्रविदो जनाः ॥ 17 ॥

ब्रह्मा का जो एक दिन है, उसको एक हजार चतुर्युगी तक की अवधि वाला और रात्रि को भी एक हजार चतुर्युगी तक की अवधि वाला जो पुरुष तत्व से जानते हैं, वे योगीजन काल के तत्व को जानने वाले हैं।

अव्यक्ताद्व्यक्तयः(स्) सर्वाः(फ्), प्रभवन्त्यहरागमे ।

रात्र्यागमे प्रलीयन्ते, तत्रैवाव्यक्तसञ्ज्ञके ॥ 18 ॥

संपूर्ण चराचर भूतगण ब्रह्मा के दिन के प्रवेश काल में अव्यक्त से अर्थात् ब्रह्मा के सूक्ष्म शरीर से उत्पन्न होते हैं और ब्रह्मा की रात्रि के प्रवेशकाल में उस अव्यक्त नामक ब्रह्मा के सूक्ष्म शरीर में ही लीन हो जाते हैं ।

भूतग्रामः(स्) स एवायं(म्), भूत्वा भूत्वा प्रलीयते ।

रात्र्यागमेऽवशः(फ्) पार्थ, प्रभवत्यहरागमे ॥ 19 ॥

हे पार्थ! वही यह भूतसमुदाय उत्पन्न हो-होकर प्रकृति वश में हुआ रात्रि के प्रवेश काल में लीन होता है और दिन के प्रवेश काल में फिर उत्पन्न होता है ।

परस्तस्मात्तु भावोऽन्योऽ- व्यक्तोऽव्यक्तात्सनातनः ।

यः(स्) स सर्वेषु भूतेषु, नश्यत्सु न विनश्यति ॥ 20 ॥

उस अव्यक्त से भी अति परे दूसरा अर्थात् विलक्षण जो सनातन अव्यक्त भाव है, वह परम दिव्य पुरुष सब भूतों के नष्ट होने पर भी नष्ट नहीं होता ।

अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्- तमाहुः(फ्) परमां(ङ्) गतिम् ।

यं(म्) प्राप्य न निवर्तन्ते, तद्धाम परमं(म्) मम ॥ 21 ॥

जो अव्यक्त 'अक्षर' इस नाम से कहा गया है, उसी अक्षर नामक अव्यक्त भाव को परमगति कहते हैं तथा जिस सनातन अव्यक्त भाव को प्राप्त होकर मनुष्य वापस नहीं आते, वह मेरा परम धाम है ।

पुरुषः(स्) स परः(फ्) पार्थ, भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया ।

यस्यान्तः(स्)स्थानि भूतानि, येन सर्वमिदं(न्) ततम् ॥ 22 ॥

हे पार्थ! जिस परमात्मा के अंतर्गत सर्वभूत है और जिस सच्चिदानन्दघन परमात्मा से यह समस्त जगत् परिपूर्ण है, वह सनातन अव्यक्त परम पुरुष तो अनन्य भक्ति से ही प्राप्त होने योग्य है।

यत्र काले त्वनावृत्ति- मावृत्तिं(ञ्) चैव योगिनः ।

प्रयाता यान्ति तं(ङ्) कालं(वँ), वक्ष्यामि भरतर्षभ ॥ 23 ॥

हे अर्जुन! जिस काल में शरीर त्याग कर गए हुए योगीजन तो वापस न लौटने वाली गति को और जिस काल में गए हुए वापस लौटने वाली गति को ही प्राप्त होते हैं, उस काल को अर्थात् दोनों मार्गों को कहूँगा।

अग्निर्ज्योतिरहः(श्) शुक्लः(ष्), षण्मासा उत्तरायणम् ।

तत्र प्रयाता गच्छन्ति, ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः ॥ 24 ॥

जिस मार्ग में ज्योतिर्मय अग्नि-अभिमानी देवता हैं, दिन का अभिमानी देवता है, शुक्ल पक्ष का अभिमानी देवता है और उत्तरायण के छः महीनों का अभिमानी देवता है, उस मार्ग में मरकर गए हुए ब्रह्मवेत्ता योगीजन उपर्युक्त देवताओं द्वारा क्रम से ले जाए जाकर ब्रह्म को प्राप्त होते हैं।

धूमो रात्रिस्तथा कृष्णः(ष्), षण्मासा दक्षिणायनम् ।

तत्र चान्द्रमसं(ञ्) ज्योतिर्-योगी प्राप्य निवर्तते ॥ 25 ॥

जिस मार्ग में धूमाभिमानी देवता है, रात्रि अभिमानी देवता है तथा कृष्ण पक्ष का अभिमानी देवता है और दक्षिणायन के छः महीनों का अभिमानी देवता है, उस मार्ग में मरकर गया हुआ सकाम कर्म करने वाला योगी उपर्युक्त देवताओं द्वारा क्रम से ले गया हुआ चंद्रमा की ज्योति को प्राप्त होकर स्वर्ग में अपने शुभ कर्मों का फल भोगकर वापस आता है ।

शुक्लकृष्णे गती ह्येते, जगतः(श्) शाश्वते मते ।

एकया यात्यनावृत्ति- मन्ययावर्तते पुनः ॥ 26 ॥

जगत् के ये दो प्रकार के- शुक्ल और कृष्ण अर्थात् देवयान और पितृयान मार्ग सनातन माने गए हैं। इनमें एक के द्वारा गया हुआ जिससे वापस नहीं लौटना पड़ता, उस परमगति को प्राप्त होता है और दूसरे के द्वारा गया हुआ फिर वापस आता है अर्थात् जन्म-मृत्यु को प्राप्त होता है ।

नैते सृती पार्थ जानन्- योगी मुह्यति कश्चन ।

तस्मात्सर्वेषु कालेषु, योगयुक्तो भवार्जुन ॥ 27 ॥

हे पार्थ! इस प्रकार इन दोनों मार्गों को तत्त्व से जानकर कोई भी योगी मोहित नहीं होता। इस कारण हे अर्जुन! तू सब काल में समबुद्धि रूप से योग से युक्त हो अर्थात् निरंतर मेरी प्राप्ति के लिए साधन करने वाला हो ।

वेदेषु यज्ञेषु तपः(स्)सु चैव,

दानेषु यत्पुण्यफलं(म्) प्रदिष्टम्।

अत्येति तत्सर्वमिदं(वँ) विदित्वा,

योगी परं(म्) स्थानमुपैति चाद्यम्॥ 28 ॥

योगी पुरुष इस रहस्य को तत्त्व से जानकर वेदों के पढ़ने में तथा यज्ञ, तप और दानादि के करने में जो पुण्यफल कहा है, उन सबको निःसंदेह उल्लंघन कर जाता है और सनातन परम पद को प्राप्त होता है ।

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतापर्वणि

श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां(यँ) योगशास्त्रे

श्री कृष्णार्जुनसं(वँ)वादे अक्षरब्रह्मयोगो नामाष्टमोऽध्यायः ॥ 8 ॥

ॐ पूर्णमदः(फ्) पूर्णमिदं(म्)पूर्णात्पूर्णमुदच्यते

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

ॐ शांतिः(श्) शांतिः(श्) शांतिः ॥

वह सच्चिदानंदघन परब्रह्म सभी प्रकार से सदा सर्वदा परिपूर्ण है। यह जगत भी उस परमात्मा से पूर्ण ही है, क्योंकि यह पूर्ण उस पूर्ण पुरुषोत्तम से ही उत्पन्न हुआ है। इस प्रकार परब्रह्म की पूर्णता से जगत पूर्ण होने पर भी वह परब्रह्म परिपूर्ण है। उस पूर्ण में से पूर्ण को निकाल देने पर भी वह पूर्ण ही शेष रहता है।